विषय-सूची

एक क-निपात(१-१३)

१. रूप आदि वर्ग- - - - - - - - - - - - - - - - - १
२. नीवरण-प्रहाण वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - ३
३. अकर्मणीय वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - ६
४. अदान्त (दमन न किया हुआ) वर्ग - - - - - - - - - ७
५. प्रणिहित एवं पारभाषी (सुबोध) वर्ग - - - - - - - - - ८
६. क्षणिक वर्ग- - - - - - - - - - - - - - - - - १०
७. प्रयत्नारंभआदि वर्ग - - - - - - - - - - - - - १२
८. कल्याणमित्रादि वर्ग - - - - - - - - - - - - - १४
९. प्रमादादि वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - १५
१०. द्वितीय प्रमादादि वर्ग - - - - - - - - - - - - १६
११. अधर्म वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - १९
१२. अनपराध वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - १९
१३. एक पुद्गल वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - २१

अंगुत्तर निकाय

उन भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध को नमस्कार है।

एक क-निपात

१. रूप आदि वर्ग

१. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान[१] श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया–

"भिक्षुओ !"

"भदंत !" कहकर भिक्षुओं ने प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा–

---

१ **भगवाति वचनं सेट्ठं, भगवाति वचनमुत्तमं।**
गरुगारवयुत्तो सो, भगवा तेन वुच्चति॥

['भगवान' श्रेष्ठ वचन है, 'भगवान' उत्तम वचन है, गौरव-युक्त होने से वे (तथागत) भगवान कहलाते हैं।]

"भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रूप को नहीं जानता[१] जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, स्त्री का रूप।

"स्त्री का रूप, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेता है।

२. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे शब्द (दूसरी आवाज़) को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, स्त्री का शब्द (आवाज़)।

"स्त्री का शब्द, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेता है।

३. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरी गंध को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेती है जैसे भिक्षुओ, स्त्री की गंध।

"स्त्री की गंध, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेती है।

४. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रस को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, स्त्री का रस।

"स्त्री का रस, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेता है।

५. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे स्पर्श को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, स्त्री का स्पर्श।

"स्त्री का स्पर्श, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेता है।

६. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रूप को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, पुरुष का रूप।

"पुरुष का रूप, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेता है।

७. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे शब्द (आवाज़) को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, पुरुष का शब्द।

---

१ पालि में यहां **'समनुपस्सामि'** शब्द का प्रयोग किया है, जिसका **'जानना'** अर्थ करना ही अधिक समीचीन होगा। जानना अर्थात अनुभूति के स्तर पर जानना, जैसे कि पूज्य श्री सत्यनारायण गोयन्काजी ने कहा है। उन्होंने 'जान्यता' और 'मान्यता' में अंतर दिखाया है। मान्यता सिर्फ मानना है, परंतु जान्यता अनुभूति के स्तर पर जानना अर्थात, प्रत्यक्ष अनुभव करना है। 'देखना' का प्रयोग हिंदी में इस अर्थ में नहीं होता। हां, इसका अर्थ भी अनुभूति के स्तर पर जानना हो सकता है बशर्ते इसके पहले कुछ रहे। इसे पू. गोयन्काजी ने एक उदाहरण से समझाया कि 'रसगुल्ले खाकर तो देख'। इस वाक्य में देखने का भाव अनुभव करना है। अट्ठकथा में समनुपस्सना दो प्रकार की की ही गयी है – **ञाणसमनुपस्सना** और **दिट्ठिसमनुपस्सना**। सभी संस्कार अनित्य हैं, नित्य नहीं; ऐसा देखना ञाणसमनुपस्सना है। 'रूप' आदि को आत्मा के रूप में मानना **'दिट्ठिसमनुपस्सना'** है। यहां **'ञाणसमनुपस्सना'** अभिप्रेत है। **'समनुपस्सामि'** का अर्थ सर्वज्ञता ज्ञान से जानना, देखना है। किंतु सब जगह 'सर्वज्ञता ज्ञान से जानता हूं' लिखने से भाषा बोझिल हो जायगी। इसलिए केवल 'जानता हूं' रखना तय किया गया।

"पुरुष का शब्द, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेता है।

८. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरी गंध को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेती है जैसे भिक्षुओ, पुरुष की गंध।

"पुरुष की गंध, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेती है।

९. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रस को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, पुरुष का रस।

"पुरुष का रस, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेता है।

१०. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे स्पर्श को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, पुरुष का स्पर्श।

"पुरुष का स्पर्श, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेता है।"

* * * * *

२. नीवरण-प्रहाण वर्ग

११. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म[१] (बात) नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न कामेच्छा उत्पन्न होती है अथवा उत्पन्न कामेच्छा

१ 'धर्म' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त किया गया है जैसे अच्छा आचरण, देशना अर्थात नैतिक शिक्षा, सनातन नियम (कानून) आदि। इसका अर्थ हेतु, कारण, नैतिक गुण, तथा तथ्य भी है जो पारमार्थिक सत्य, परासत्ता का विलोम है। धर्म का अर्थ कहीं सिद्धांत भी होता है तो कहीं इसका अर्थ बात भी होता है। **'सब्बे धम्मा अनिच्चा**ति' में धर्म का अर्थ सभी संवृति सत्य है अर्थात प्रत्यक्ष जगत है। **'दिट्ठेव धम्मे'** में धर्म इस जीवन को, इस लोक को द्योतित करता है, जो सम्परायिक अर्थात लोकोत्तर (परलोक) का विलोम है। **'लोक धम्मा'** में धर्म का अर्थ इस दुनिया में प्राप्त होने वाली चीजें जैसे लाभ-हानि, यश-अपयश, निंदा-प्रशंसा और सुख-दुःख इत्यादि हैं जो लोक धर्म कहे जाते हैं। **'उत्तरिमनुस्सधम्मा'** से अभिप्रेत हैं अलौकिक बातें। **'गामधम्मा'** से मतलब है गांव के लोगों द्वारा बोली जाने वाली बातें या उनके द्वारा किया जाने वाला आचरण। **'वयधम्मा सङ्खारा'** में धर्म का अर्थ स्वभाव है अर्थात सभी संस्कार व्ययधर्मा, क्षयधर्मा हैं।

धर्म से अभिप्राय नाम तथा रूप संबंधी सभी बातों से है। चित्त धर्म है तो चैतसिक भी धर्म हैं। रूप धर्म है तो इसकी अनित्यता भी धर्म है। कुशलतथा अकुशलचित्त वृत्तियां भी धर्म हैं।

धर्म का अर्थ नैतिकता, न्याय, उचित व्यवहार, आचरण, कर्त्तव्य आदि है। **'ञातिधम्मा'** का अर्थ संबंधियों के प्रति कर्त्तव्य से है। **'देय्यधम्म'** का अर्थ दान से है। **'पापधम्मा'** बुरा आचरण है और **'लोभधम्मा'** लालची स्वभाव को बताता है। धर्म का अर्थ 'विषय' भी होता है जैसे एक कनिपात में एक ही एक धर्म का वर्णन है, द्विक निपात में दो-दो धर्मों का और त्रिक निपात में तीन-तीन धर्मों का। इसी तरह और निपातों में भी बढ़ते क्रम से धर्मों का वर्णन है।

अत्यधिक विपुल होती है जैसे, भिक्षुओ, यह शुभ-निमित्त (राग पैदा करने वाला निमित्त)।

"शुभ-निमित्त का ही, भिक्षुओ, गलत ढंग से (अयथार्थ) चिंतन करने से अनुत्पन्न कामेच्छा उत्पन्न होती है और उत्पन्न कामेच्छा... होती है।

१२. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न द्वेष अत्यधिक विपुल होता है जैसे, भिक्षुओ, यह प्रतिकूल निमित्त (द्वेष जगाने वाला निमित्त)।

"प्रतिकूल निमित्त का ही, भिक्षुओ, अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है और उत्पन्न द्वेष... होता है।

१३. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न आलस्य उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न आलस्य अत्यधिक विपुल होता है जैसे, भिक्षुओ, यह अरुचि, तंद्रा, जम्हाई लेना, भोजनांतर की तंद्रा तथा चित्त की सुस्ती।

"जिसका चित्त सुस्ती-ग्रस्त है, भिक्षुओ, उसी में अनुत्पन्न आलस्य उत्पन्न होता है और उत्पन्न आलस्य... होता है।

१४. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप अत्यधिक विपुल होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त की अशांति।

"अशांत-चित्त में ही भिक्षुओ, अनुत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप उत्पन्न होता है और उत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप... होता है।

१५. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न संशय उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न संशय अत्यधिक विपुल होता है जैसे, भिक्षुओ, यह अयथार्थ चिंतन करना।

"अयथार्थ चिंतन होने से ही भिक्षुओ, अनुत्पन्न संशय उत्पन्न होता है और उत्पन्न संशय... होता है।

१६. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न कामेच्छा अनुत्पन्न रहती है अथवा उत्पन्न कामेच्छा का प्रहाण होता है जैसे, भिक्षुओ, यह अशुभ-निमित्त (जुगुप्सा जगाने वाला निमित्त)।

"अशुभ-निमित्त पर भिक्षुओ, सही ढंग से (यथार्थ) चिंतन करने से अनुत्पन्न कामेच्छा उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न कामेच्छा का प्रहाण होता है।

१७. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न द्वेष अनुत्पन्न रहता है अथवा उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है जैसे, भिक्षुओ, यह मैत्री[१] के आधार पर चित्त की विमुक्ति।

"मैत्री के आधार पर चित्त की विमुक्ति पर यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है।

१८. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न आलस्य उत्पन्न नहीं होता अथवा उत्पन्न आलस्य का प्रहाण होता है जैसे, भिक्षुओ, यह आरंभिक प्रयत्न, आयास और प्रयास (अधिक-प्रयत्न और सर्वाधिक-प्रयत्न)[२]।

"जो प्रयत्नशील है, भिक्षुओ, उसमें अनुत्पन्न आलस्य उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न आलस्य का प्रहाण होता है।

१९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप उत्पन्न नहीं होता अथवा उत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप का प्रहाण होता है, जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त की शांति।

"उपशांत चित्त में भिक्षुओ, अनुत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप का प्रहाण होता है।

२०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न संशय उत्पन्न नहीं होता अथवा उत्पन्न संशय का प्रहाण होता है जैसे, भिक्षुओ, यह यथार्थ चिंतन करना।

"यथार्थ चिंतन करने से भिक्षुओ, अनुत्पन्न संशय उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न संशय का प्रहाण होता है।"

* * * * *

१ **'मेत्ता चेतोविमुत्ति'** – मैत्री के आधार पर चित्त विमुक्ति का अभ्यास करता है, मैत्री भरे चित्त से चित्त विमुक्ति का अभ्यास करता है जैसा पू. श्री गोयन्काजी ने बताया है। अट्ठकथाकारके अनुसार भी मैत्री से युक्त चित्त नीवरण आदि विरोधी धर्मों से विमुक्त होता है। हम चार ब्रह्मविहारों की भावना करते हैं जिनमें मेत्ता एक ब्रह्मविहार है। मेत्ता भावना से व्याप्त चित्त से चित्त-विमुक्ति होती है जिसका साधक अभ्यास करता है।

२ **आरम्भधातु, निक्कमधातु** और **परक्कमधातु** का अर्थ, क्रमशः, आरंभिक प्रयत्न, आयास (अधिक प्रयत्न) और प्रयास (सर्वाधिक प्रयत्न) किया गया है।

३. अकर्मणीय वर्ग

२१. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म (वस्तु) नहीं जानता जो अभ्यास (भावना) न करने से इस प्रकार निकम्मा हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से चित्त निकम्मा हो जाता है।

२२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से इतना काम का हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से चित्त काम का हो जाता है।

२३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास न करने से इतना महान अनर्थकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से चित्त महान अनर्थकारी हो जाता है।

२४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से इतना महान कल्याणकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से चित्त महान कल्याणकारी हो जाता है।

२५. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास न करने से, जिसके अप्रकट[1] रहने से (आविर्भाव न होने से) इतना महान अनर्थकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से, अप्रकट रहने से चित्त महान अनर्थकारी हो जाता है।

२६. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से, जिसके प्रकट होने से (आविर्भाव होने से) इतना महान कल्याणकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से, प्रकट होने से चित्त महान कल्याणकारी हो जाता है।

२७. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास न करने से, बहुलीकरण[2] (बार-बार अभ्यास) न करने से इतना महान अनर्थकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

---

१ जिस चित्त की शक्तियां अप्रकट हैं, उस चित्त को भी अप्रकट ही जानना चाहिए।

२ यहां पालि में **'बहुलीकतं'** शब्द है। इसका अर्थ बार-बार अभ्यास से है पर अच्छा होगा इसके लिए 'बहुलीकरण' या 'भावना करना' शब्द रखना। कहा भी गया है – **चित्तं, भिक्खवे, भावितं बहुलीकतन्ति एत्थ समथविपस्सनावसेन भावितञ्चेव पुनपुनकतञ्च चित्तं अधिप्पेतं।**

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से, बहुलीकरण न करने से चित्त महान अनर्थकारी हो जाता है।

२८. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से, बहुलीकरण करने से इतना महान कल्याणकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से, बहुलीकरण करने से चित्त महान कल्याणकारी हो जाता है।

२९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास न करने से, बहुलीकरण न करने से इस प्रकार दुःखदायी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से, बहुलीकरण न करने से चित्त दुःखदायी हो जाता है।

३०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से, बहुलीकरण करने से इतना सुखदायी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से, बहुलीकरण करने से चित्त सुखदायी हो जाता है।"

* * * * *

४. अदान्त (दमन न किया हुआ) वर्ग

३१. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म (वस्तु) नहीं जानता जिसका यदि दमन न किया जाय तो ऐसा महान अनर्थकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, दमन न किया गया चित्त महान अनर्थकारी होता है।

३२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसका दमन किये जाने पर इतना महान कल्याणकारी (अर्थ सिद्ध करने वाला) होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, दमन किया गया चित्त महान कल्याणकारी होता है।

३३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अरक्षित रहने पर ऐसा महान अनर्थकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अरक्षित चित्त महान अनर्थकारी होता है।

३४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो संरक्षित रहने पर ऐसा महान कल्याणकारीहोता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, संरक्षित चित्त महान कल्याणकारीहोता है।

३५-३६. ...अरक्षित... रक्षित... (शब्दों की भिन्नता है, अर्थ-भेद नहीं है)।

३७. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो असंयत होने पर महान अनर्थकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, असंयत चित्त महान अनर्थकारी होता है।

३८. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो संयत रहने पर ऐसा कल्याणकारीहोता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, संयत चित्त महान कल्याणकारीहोता है।

३९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसका दमन न करने पर, जिसके अरक्षित रहने पर और असंयत रहने पर ऐसा महान अनर्थकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, चित्त का दमन न करने पर, इसके अरक्षित रहने पर और असंयत रहने पर यह महान अनर्थकारी होता है।

४०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसका दमन करने पर, जिसके सुरक्षित रहने पर, और संयत रहने पर ऐसा महान कल्याणकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, चित्त का दमन करने पर, इसके सुरक्षित रहने पर और संयत रहने पर महान कल्याणकारी होता है।"

* * * * *

५. प्रणिहित एवं पारभाषी (सुबोध) वर्ग

४१. "जैसे भिक्षुओ, शालि (धान) की बाली हो अथवा जौ की बाली हो और वह ठीक ढंग से न रखी गई (मिथ्या प्रणिहित) हो और वह हाथ या पैर से दब जाय तो इसकी संभावना नहीं है कि वह हाथ या पैर को बींधेगा या खून निकालेगा। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, बाली के ठीक से न रखे होने के कारण। इसी प्रकार भिक्षुओ, यह संभव नहीं है कि कोई भिक्षु ठीक से न रखे गये (सम्यक प्रणिहित) चित्त से अविद्या को बींध सकेगा, विद्या का उपार्जन कर

सके गा तथा निर्वाण का साक्षात्कार कर सके गा। यह ऐसा क्यों? चित्त के ठीक से रखे न रहने के कारण।

४२. "जैसे भिक्षुओ, शालि की बाली हो अथवा जौ की बाली हो और वह ठीक से रखी गई (सम्यक प्रणिहित) हो और वह हाथ या पैर से दब जाय तो इसकी संभावना है कि वह हाथ या पैर को बींधेगा या खून निकालेगा। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, शालि की बाली के ठीक से रखे होने के कारण। इसी प्रकार, भिक्षुओ, यह संभव है कि वह भिक्षु ठीक से रखे गये चित्त से अविद्या को बींध सके गा, विद्या का उपार्जन कर सके गा तथा निर्वाण का साक्षात्कार कर सके गा। यह ऐसा क्यों? चित्त के ठीक से रखे रहने के कारण।

४३. "यहां भिक्षुओ, मैं एक प्रदुष्ट-चित्त आदमी के चित्त को अपने चित्त से यथाभूत जानता[१] हूं कि यदि यह व्यक्ति इसी समय मर जाये तो ऐसा होगा जैसे कि लाकर नरक में डाल दिया गया हो। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, इसका चित्त ही प्रदुष्ट है। भिक्षुओ, चित्त के प्रदुष्ट होने के कारण ही यहां कुछ प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्त कर नरक में पैदा होते हैं।

४४. "यहां भिक्षुओ, मैं एक प्रसन्नचित्त आदमी के चित्त को अपने चित्त से यथाभूत जानता हूं कि यदि यह व्यक्ति इसी समय मर जाये तो ऐसा होगा जैसे कि लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, इसका चित्त ही प्रसन्न है। भिक्षुओ, चित्त के प्रसन्न होने के कारण ही यहां कुछ प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्त कर स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होते हैं।

४५. "जैसे भिक्षुओ, पानी का तालाब मैला हो, (पानी) चंचल हो और कीचड़-युक्त हो, वहां कि नारे पर खड़े आंख वाले आदमी को न सीपी दिखाई दे, न शंख, न कंकड़ दिखाई दे, न पत्थर और न चलती हुई अथवा स्थिर मछलियां ही दिखाई दें। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, पानी के मलिन (आविल) होने के कारण। इसी प्रकार भिक्षुओ, इसकी संभावना नहीं है कि वह भिक्षु मैले चित्त से स्व-हित को जान सके गा, पर-हित को जान सके गा, उभय-हित को

१ यहां पालि में **'पजानाति'** शब्द है। इसका अर्थ यथाभूत जानने से है। जैसे-जैसे साधक साधना के क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास करता है, उसके ज्ञान का क्षेत्र बढ़ता जाता है। **'जानाति'** का अर्थ 'जानता है', **'विजानाति'** का अर्थ 'बहुतों में से अलग कर जानता है'; **'पजानाति'** का अर्थ 'यथाभूत जानता है'; **'परिजानाति'** का अर्थ 'जहां तक जानने की परिधि है वहां तक जानता है अर्थात परिपूर्ण रूप से जानता है', **'अभिजानाति'** का अर्थ 'सम्यक रूप से जानता है।' और **'सञ्जानाति'** का अर्थ 'पहचानता है।' पालि में आये ये शब्द पारिभाषिक हैं और ये साधक की भिन्न-भिन्न अवस्थाएं बताते हैं।

जान सके गा और सामान्य मनुष्य-धर्म से श्रेष्ठतर विशिष्ट आर्य-ज्ञान-दर्शन को साक्षात कर सके गा। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, चित्त के मैले होने के कारण।

४६. "जैसे भिक्षुओ, पानी का तालाब अच्छा हो, स्वच्छ हो, निर्मल हो, वहां किनारे पर खड़े आंख वाले आदमी को सीपी भी दिखाई दे, शंख भी दिखाई दे, कंकड़ भी दिखाई दे, पत्थर भी दिखाई दे और चलती हुई अथवा स्थिर मछलियां भी दिखाई दें। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, पानी के निर्मल (अनाविल) होने के कारण। इसी प्रकार भिक्षुओ, इसकी संभावना है कि वह भिक्षु निर्मल चित्त से स्व-हित को जान सके गा, पर-हित को जान सके गा, उभय-हित को जान सके गा और सामान्य मनुष्य-धर्म से श्रेष्ठतर विशिष्ट आर्य-ज्ञान-दर्शन को साक्षात कर सके गा। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, चित्त के निर्मल होने के कारण।

४७. "भिक्षुओ, जितने भी वृक्ष हैं उनमें कोमलता (मृदुता) तथा कमनीयता की दृष्टि से स्पंदन ही श्रेष्ठ कहलाता है। उसी प्रकार भिक्षुओ, मैं एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जो भावित करने से ऐसा मृदु तथा कमनीय हो जाता हो, जैसे यह चित्त।

"भिक्षुओ, चित्त भावना करने से, बार-बार[1] भावना करने से मृदु हो जाता है तथा कमनीय हो जाता है।

४८. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई भी ऐसा एक धर्म (वस्तु) नहीं जानता जो इतना शीघ्र परिवर्तनशील हो जैसे कि यह चित्त। भिक्षुओ, चित्त इतना शीघ्र परिवर्तनशील है कि इसकी उपमा देना भी सहज नहीं है।

४९. "भिक्षुओ, यह चित्त प्रभास्वर है। (स्वाभाविक रूप से विशुद्ध है।) यह बाह्यमल से दूषित है।

५०. "भिक्षुओ, यह चित्त प्रभास्वर है। यह बाह्यमल से पूरी तरह से मुक्त है।"

* * * * *

६. क्षणिक वर्ग

५१. "भिक्षुओ, यह चित्त (स्वाभाविक रूप से) प्रभास्वर है। यह बाह्यमल से दूषित है। इस बात को अश्रुत (अज्ञानी) पृथग्जन यथार्थ रूप से (यथाभूत)

१ यहां पालि में **'भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तति'** है। **'भिय्योभावाय'** का अर्थ 'अधिक होता है, कई गुणा होता है'। **'भिय्योभावाय वेपुल्लाय'** का अर्थ अधिक मात्रा में विपुलता को प्राप्त करता है। **'भिय्योभावाय'** का अर्थ बार-बार बढ़ना है।

नहीं जानता है। इसलिए 'अश्रुत पृथग्जन को चित्त-भावना (चित्ताभ्यास) होती ही नहीं ऐसा मैं कहता हूं।'

५२. "भिक्षुओ, यह चित्त (स्वाभाविक रूप से) प्रभास्वर है। यह बाह्यमल से पूरी तरह से मुक्त है। इस बात को श्रुत (ज्ञानी) आर्य-श्रावक यथार्थ रूप से जानता है। इसलिए 'श्रुतवान आर्य-श्रावक को चित्त-भावना होती है ऐसा मैं कहता हूं।'

५३. "भिक्षुओ, यदि भिक्षु चुटकी बजाने भर (उतने से समय भर) भी मैत्री-भावना करता है तो भिक्षुओ, ऐसा भिक्षु ध्यान से रिक्त नहीं होकर (अरित्तज्झानी=ध्यान से अरिक्त) विचरण करता है, शास्ता के अनुशासन में रहने वाला, शास्ता के उपदेश के अनुसार आचरण करनेवाला; वह भिक्षु व्यर्थ ही राष्ट्र-पिंड[1] खाने वाला नहीं होता। जो बार-बार मैत्री-भावना करता है उसका तो कहना ही क्या।

५४-५५. ऐसे ही मैत्री भावित करना... मन में धारण करना...।

५६. "भिक्षुओ, जितने भी अकुशल-धर्म (बुरी बातें) हैं, अकुशल के सहायक हैं, अकुशल-पक्षीय हैं, वे सभी मन से निःसृत हैं। मन उनमें पहले उत्पन्न होता है और अकुशल-धर्म पीछे।

५७. "भिक्षुओ, जितने भी कुशल-धर्म (अच्छी बातें) हैं, कुशल के सहायक हैं, कुशलपक्षीय हैं वे सभी मन से निःसृत हैं। मन उनमें पहले उत्पन्न होता है और कुशल-धर्म पीछे।

५८. भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म (बात) नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न होते हैं अथवा उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रमाद।

"भिक्षुओ, प्रमादी के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

५९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि भिक्षुओ, यह अप्रमाद।

---

१ **रट्ठपिण्ड** (राष्ट्र-पिंड) – **ञातिपरिवट्टं पहाय रट्ठं निस्साय पब्बजितेन परेसं गेहतो पटिलद्धत्ता पिण्डपातो रट्ठपिण्डो नाम वुच्चति।**

रिश्तेदारों की मंडली को छोड़ राष्ट्र पर निर्भर हो प्रव्रजित द्वारा दूसरे के घर से भोजन प्राप्त करने के कारण वह भोजन राष्ट्र-पिंड कहलाता है।

"भिक्षुओ, अप्रमादी के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

६०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह आलस्य।

"भिक्षुओ, आलसी के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है।"

* * * * *

७. प्रयत्नारंभआदि वर्ग

६१. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म (बात) नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रयत्न[1] का आरंभ।

"भिक्षुओ, प्रयत्नशील के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

६२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह इच्छा की अधिकता।

"भिक्षुओ, अधिक इच्छा करने वाले के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

६३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह अल्पेच्छता।

"भिक्षुओ, अल्पेच्छ व्यक्ति के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

६४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह असंतोष।

"भिक्षुओ, असंतुष्ट के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

---

१ यहां पालि में **वीर्य** शब्द है। इसका अर्थ 'प्रयत्न' किया गया है।

६५. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह संतोष।

"भिक्षुओ, संतुष्ट के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

६६. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह अयथार्थ चिंतन करना।

"भिक्षुओ, अयथार्थ चिंतन करनेवाले के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

६७. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह यथार्थ चिंतन करना।

"भिक्षुओ, यथार्थ चिंतन करने वाले के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

६८. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह असंप्रज्ञान।

"भिक्षुओ, असंप्रज्ञानी व्यक्ति के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

६९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह संप्रज्ञान[1]।

"भिक्षुओ, संप्रज्ञानी के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

७०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह कुसंगति(पापमित्रता)।

---

१ यहां पालि में **'सम्पजञ्ञं'** शब्द है (बु. सं. 'संप्रज्ञान')। यह 'ज्ञान' से भिन्न है। ज्ञान बौद्धिक धरातल पर भी हो सकता है, बल्कि इसी धरातल पर बहुधा होता है। 'संप्रज्ञान' का अर्थ प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा अनुभूति के स्तर पर का ज्ञान है जहां लंबे समय तक वेदनाओं के उत्पाद, स्थिति और भंग को अनुभव के स्तर पर जाना जाता है।

"भिक्षुओ, पापमित्र के संग में रहने वाले के अनुत्पन्न अकु शल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कु शल-धर्मों की परिहानिहोती है।"

* * * * *

८. क ल्याणमित्रादि वर्ग

७१. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म (बात) नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कु शल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकु शल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह सुसंगति (क ल्याणमित्रता)।

"भिक्षुओ, क ल्याणमित्र का संग क रने वाले के अनुत्पन्न कु शल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकु शल-धर्मों की परिहानिहोती है।

७२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकु शल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कु शल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह अकु शल-धर्मों में लगना और कु शल-धर्मों में न लगना।

"भिक्षुओ, अकु शल-धर्मों में लगने और कु शल-धर्मों में न लगने से अनुत्पन्न अकु शल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कु शल धर्मों की परिहानि होती है।

७३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कु शल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकु शल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह कु शल-धर्मों में लगना और अकु शल-धर्मों में न लगना।

"भिक्षुओ, कु शल-धर्मों में लगने और अकु शल-धर्मों में न लगने से अनुत्पन्न कु शल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकु शल-धर्मों की परिहानि होती है।

७४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न बोधि-अंग[1] उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न बोधि-अंग भावना[2] की पूर्णता को नहीं प्राप्त होते जैसे कि, भिक्षुओ, यह यथार्थ चिंतन न क रना।

---

१ **बोज्झंग** (बोध्यंग) – **बुज्झति एतायाति बोधि, बोधिया अङ्गो बोज्झङ्गो –** जिन धर्मों द्वारा आर्य-सत्य जाने जाते हैं उन्हें बोधि क हते हैं। बोधि के अंग को बोध्यंग क हते हैं। बोध्यंग सात हैं जैसे स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि तथा उपेक्षा।

२ **भावना**= बार-बार अनुभूति के स्तर पर जानना।

"भिक्षुओ, अयथार्थ चिंतन करनेवाले के अनुत्पन्न बोधि-अंग उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न बोधि-अंग भावना[१] की पूर्णता को नहीं प्राप्त होते।

७५. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न बोधि-अंग उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न बोधि-अंग भावना की पूर्णता को प्राप्त होते हैं जैसे कि, भिक्षुओ, यह यथार्थ चिंतन करना।

"भिक्षुओ, यथार्थ चिंतन करनेसे अनुत्पन्न बोधि-अंग उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न बोधि-अंग भावना की पूर्णता को प्राप्त होते हैं।

७६. "भिक्षुओ, यह जो सगे-संबंधियों का न रहना है, यह कोई बड़ी परिहानि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की परिहानि है यही सबसे बड़ी परिहानि है।

७७. "भिक्षुओ, यह जो सगे-संबंधियों की वृद्धि है, यह कोई बड़ी वृद्धि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की वृद्धि है यही सबसे बड़ी वृद्धि है। इसलिए, भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि हम प्रज्ञा-वृद्धि द्वारा उन्नति करेंगे। ऐसा ही, भिक्षुओ, सीखना चाहिए।

७८. "भिक्षुओ, यह जो भोग-सामग्री की परिहानि है, यह कोई बड़ी परिहानि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की परिहानि है यही सबसे बड़ी परिहानि है।

७९. "भिक्षुओ, यह जो भोग-सामग्री की वृद्धि है, यह कोई बड़ी वृद्धि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की वृद्धि है यही सबसे बड़ी वृद्धि है। इसलिए, भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि हम प्रज्ञा-वृद्धि द्वारा उन्नति करेंगे। ऐसा ही, भिक्षुओ, सीखना चाहिए।

८०. "भिक्षुओ, यह जो यश की हानि है, यह कोई बड़ी हानि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की हानि है यही सबसे बड़ी हानि है।"

* * * * *

९. प्रमादादि वर्ग

८१. "भिक्षुओ, यह जो यश की वृद्धि है, यह कोई बड़ी वृद्धि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की वृद्धि है यही सबसे बड़ी वृद्धि है। इसलिए, भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि हम प्रज्ञा-वृद्धि द्वारा उन्नति करेंगे। ऐसा ही, भिक्षुओ, सीखना चाहिए।

---

१ **भावना** = बार-बार अनुभूति के स्तर पर जानना।

८२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो इतना महान अनर्थकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रमाद।

"भिक्षुओ, प्रमाद महान अनर्थकारी है।

८३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो इतना महान कल्याणकारीहो जैसे कि, भिक्षुओ, यह अप्रमाद।

"भिक्षुओ, अप्रमाद महान कल्याणकारीहै।

८४-८५. इसी प्रकार आलस्य... प्रयत्नारंभ।

८६-८७. इसी प्रकार इच्छा की अधिकता... अल्पेच्छता।

८८-८९. इसी प्रकार असंतोष... संतोष।

९०-९१. इसी प्रकार गलत ढंग से (अयथार्थ) चिंतन करना...सही ढंग से (यथार्थ) चिंतन करना।

९२-९३. इसी प्रकार असंप्रज्ञान... संप्रज्ञान।

९४-९५. इसी प्रकार कुसंगति... सुसंगति।

९६-९७. इसी प्रकार अकुशल धर्मों का अभ्यास तथा कुशल धर्मों का अनभ्यास करना...कुशल धर्मों का अभ्यास तथा अकुशल धर्मों का अनभ्यास करना।

* * * * *

१०. द्वितीय प्रमादादि वर्ग

९८. "अपने से संबंधित बातों में (व्यक्तिनिष्ठ बातों में), भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान अनर्थकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रमाद।

"भिक्षुओ, प्रमाद महान अनर्थकारी है।

९९. "अपने से संबंधित बातों में, भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान कल्याणकारीहो जैसे कि, भिक्षुओ, यह अप्रमाद।

"भिक्षुओ, अप्रमाद महान कल्याणकारीहै।

१००-१०१. इसी प्रकार आलस्य... प्रयत्नारंभ।

१०२-१०९. इसी प्रकार इच्छा की अधिकता... अल्पेच्छता।

इसी प्रकार असंतोष... संतोष।

इसी प्रकार अयथार्थ चिंतन करना... यथार्थ चिंतन करना।

इसी प्रकार असंप्रज्ञान... संप्रज्ञान।

११०. "बाह्य से संबंधित बातों में (वस्तुनिष्ठ बातों में), भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान अनर्थकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह पापमित्रता (कुसंगति)।

"भिक्षुओ, पापमित्रता महान अनर्थकारी है।

१११. "बाह्य से संबंधित बातों में, भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान कल्याणकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह कल्याणमित्रता (सुसंगति)।

"भिक्षुओ, कल्याणमित्रता महान कल्याणकारी है।

११२. "बाह्य से संबंधित बातों में, भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान अनर्थकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह अकुशल-धर्मों का अभ्यास तथा कुशल-धर्मों का अनभ्यास करना।

"अकुशल-धर्मों का अभ्यास तथा कुशल-धर्मों का अनभ्यास करना, भिक्षुओ, बहुत अनर्थकारी है।

११३. "अपने से संबंधित बातों में, भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान कल्याणकारी हो जैसे कि भिक्षुओ, यह कुशल धर्मों का अभ्यास तथा अकुशलधर्मों का अनभ्यास करना।

"कुशल-धर्मों का अभ्यास तथा अकुशल-धर्मों का अनभ्यास करना, भिक्षुओ, महान कल्याणकारी है।

११४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म (बात) नहीं जानता जो इस प्रकार सद्धर्म के भूल जाने (उलझनें पैदा करने, लोप हो जाने), सद्धर्म के अंतर्धान होने का कारण हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रमाद।

"भिक्षुओ, प्रमाद सद्धर्म के भूलने, सद्धर्म के अंतर्धान होने का कारण होता है।

११५. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जो इस प्रकार सद्धर्म के स्थित रहने का (कायम रहने का), नहीं भूलने का, अंतर्धान न होने का कारण हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह अप्रमाद।

"भिक्षुओ, अप्रमाद, सद्धर्म के स्थित रहने का, न भूलने का, अंतर्धान न होने का कारण होता है।

११६-११७. इसी प्रकार आलस्य... प्रयत्नारंभ।

११८-१२९. इसी प्रकार इच्छा की अधिकता... अल्पेच्छता।

इसी प्रकार असंतोष... संतोष।

इसी प्रकार अयथार्थ चिंतन करना... यथार्थ चिंतन करना।

इसी प्रकार असंप्रज्ञान... संप्रज्ञान।

इसी प्रकार पापमित्रता... कल्याणमित्रता।

इसी प्रकार अकुशल-धर्मों का अभ्यास तथा कुशल-धर्मों का अनभ्यास करना।...कुशल-धर्मों का अभ्यास तथा अकुशल-धर्मों का अनभ्यास करना।

१३०. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अधर्म को धर्म बताते हैं वे भिक्षु बहुत जनों के अहित (अकल्याण) में लगे हैं, बहुत जनों के असुख में लगे हैं; बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ, अहित तथा दुःख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत अपुण्य उपार्जित करतेहैं तथा इस सद्धर्म के अंतर्धान होने में सहायता करतेहैं।

१३१. "भिक्षुओ, जो भिक्षु धर्म को अधर्म बताते हैं वे... करते हैं।

१३२-१३९. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अविनय (भिक्षु-अनियम) को विनय (भिक्षु-नियम) बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु विनय को अविनय बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अभाषित को, तथागत द्वारा अकथित वचन को, तथागत द्वारा भाषित, तथागत द्वारा कथित वचन बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा भाषित को, तथागत द्वारा कथित वचन को, तथागत द्वारा अभाषित, तथागत द्वारा अकथित वचन बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अनाचरित को, तथागत द्वारा आचरित बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा आचरित को तथागत द्वारा अनाचरित बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त को, तथागत द्वारा प्रज्ञप्त बताते हैं, वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा प्रज्ञप्त को, तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त बताते हैं वे बहुत जनों के अहित में लगे हैं, बहुत जनों के असुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ, अहित तथा दुःख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत अपुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म के अंतर्धान होने में सहायता करते हैं।"

* * * * *

११. अधर्म वर्ग

१४०. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अधर्म को अधर्म बताते हैं वे बहुत जनों के हित (कल्याण) में लगे हैं, बहुत जनों के सुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत पुण्य उपार्जित करते हैं और वे इस सद्धर्म की स्थापना करते हैं।

१४१. "भिक्षुओ, जो भिक्षु धर्म को धर्म बताते हैं वे... करते हैं।

१४२-१४८. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अविनय को अविनय बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु विनय को विनय बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अभाषित को तथा अकथित वचन को, तथागत द्वारा अभाषित तथा अकथित वचन बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा भाषित को तथा कथित वचन को, तथागत द्वारा भाषित तथा कथित वचन बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अनाचरित को तथागत द्वारा अनाचरित बताते है वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा आचरित को तथागत द्वारा आचरित बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त को, तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त बताते हैं वे... करते हैं।

१४९. "भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा प्रज्ञप्त को, तथागत द्वारा प्रज्ञप्त बताते हैं वे बहुत जनों के हित में लगे हैं, बहुत जनों के सुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत पुण्य उपार्जित करते हैं और वे इस सद्धर्म की स्थापना करते हैं।"

* * * * *

१२. अनपराध वर्ग

१५०. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अनपराध को अपराध (आपत्ति) बताते हैं वे भिक्षु बहुत जनों के अहित में लगे हैं, बहुत जनों के असुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ, अहित तथा दुःख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत अपुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म के अंतर्धान होने में सहायता करते हैं।

१५१. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अपराध को अनपराध बताते हैं वे... करते हैं।

१५२-१५९. "भिक्षुओ, जो भिक्षु हलके अपराध[१] को भारी अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु भारी अपराध[२] को हलका अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु संगीन अपराध[३] को अ-संगीन अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु अ-संगीन अपराध[४] को संगीन अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु सावशेष (आंशिक) अपराध[५] को निर्विशेष (सर्वांगिक) अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु सर्वाङ्गिक अपराध[६] को सावशेष अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रायश्चित्त की जा सकने वाली आपत्ति (सप्रतिकर्म-आपत्ति) को प्रायश्चित्त न की जा सकने वाली आपत्ति बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रायश्चित्त न की जा सकने वाली आपत्ति को प्रायश्चित्त की जा सकने वाली आपत्तिबताते हैं वे... करते हैं।

१६०. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अनपराध को अनपराध बताते हैं वे भिक्षु बहुत जनों के हित में लगे हैं, बहुत जनों के सुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत पुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म की स्थापना करते हैं।

१६१. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अपराध कोअपराध बताते हैं वे... करतेहैं।

१६२-१६९. "भिक्षुओ, जो भिक्षु हलके अपराध को हलका अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु भारी अपराध कोभारी अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

---

१ **'लहुकं आपत्ति'** (पालि) = हलका अपराध

२ **'गरुका आपत्ति'** (पालि) = भारी अपराध

३ **'दुट्ठुल्ल आपत्ति'** (पालि) = संगीन अपराध

४ **'अदुट्ठुल आपत्ति'** (पालि) = अ-संगीन अपराध

५ **'सावसेस आपत्ति'** (पालि) = आंशिक अपराध

६ **'अनवसेस आपत्ति'** (पालि) = सर्वाङ्गिक अपराध

"भिक्षुओ, जो भिक्षु संगीन अपराध को संगीन अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु अ-संगीन अपराध को अ-संगीन अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु सावशेष अपराध को सावशेष अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु निर्विशेष अपराध को निर्विशेष अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रायश्चित्त की जा सकने वाली आपत्ति को प्रायश्चित्त की जा सकने वाली बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रायश्चित्त न की जा सकने वाली आपत्ति को प्रायश्चित्त न की जा सकने वाली आपत्ति बताते हैं वे भिक्षु बहुत जनों के हित में लगे हैं, बहुत जनों के सुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत पुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म की स्थापना करते हैं।"

* * * * *

१३. एक पुद्गल वर्ग

१७०. "भिक्षुओ, लोक में एक व्यक्ति बहुत जनों के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए, लोकों पर अनुकंपा करने के लिए तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित और सुख के लिए उत्पन्न होता है। कौन-सा एक व्यक्ति? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध।

"भिक्षुओ, यह एक व्यक्ति लोक में बहुत जनों के हित के लिए... उत्पन्न होता है।

१७१. "भिक्षुओ, एक व्यक्ति का लोक में प्रादुर्भाव दुर्लभ है। किस एक व्यक्ति का? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध का।

"भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति का लोक में प्रादुर्भाव दुर्लभ है।

१७२. "भिक्षुओ, एक व्यक्ति लोक में उत्पन्न होता है वह असाधारण होता है। कौन-सा एक व्यक्ति? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध।

"भिक्षुओ, यह एक व्यक्ति लोक में उत्पन्न होता है जो असाधारण होता है।

१७३. "भिक्षुओ, एक व्यक्ति का शरीरांत बहुत जनों के अनुताप का कारण होता है। किस एक व्यक्ति का? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध का।

"भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति का शरीरांत बहुत जनों के अनुताप के लिए होता है।

१७४. "भिक्षुओ, लोक में एक व्यक्ति उत्पन्न होता है जो अद्वितीय होता है, आत्मनिर्भर होता है, जो अप्रतिम होता है, उसके जैसा कोई नहीं होता तथा उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता, और जो द्विपदों में श्रेष्ठतम (अग्र) होता है। कौन-सा एक व्यक्ति? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध।

"भिक्षुओ, यह एक व्यक्ति लोक में... द्विपदोंमें अग्र होता है।

१७५-१८६. "भिक्षुओ, एक व्यक्ति के प्रादुर्भाव होने से महती (व्यापक) दृष्टि मिल जाती है[1], बहुत आलोक हो जाता है, बहुत प्रकाश फैल जाता है, छः श्रेष्ठ धर्म पैदा हो जाते हैं, चारों प्रतिसंभिदाओं[2] (=मीमांसापूर्ण ज्ञान – अत्थ, धम्म, निरुत्ति, पटिभान-पटिसम्भिदा) का साक्षात्कार हो जाता है, अनेक धातुओं का प्रतिवेधन हो जाता है, नाना धातुओं का प्रतिवेधन हो जाता है, विद्या-विमुक्ति फल का साक्षात्कार हो जाता है, स्रोतापत्ति फल का साक्षात्कार हो जाता है, सकृदागामी फल का साक्षात्कार हो जाता है, अनागामी फल का साक्षात्कार हो जाता है, और अर्हत्व फल का साक्षात्कार हो जाता है। किस एक व्यक्ति के? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध के।

"भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति के प्रादुर्भाव होने से... अर्हत्वफल का साक्षात्कार हो जाता है।

१८७. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई भी एक व्यक्ति ऐसा नहीं जानता जो तथागत द्वारा प्रवर्तित अनुत्तर धर्म-चक्र को सम्यक प्रकार से अनुप्रवर्तित कर सके, जैसे भिक्षुओ, यह सारिपुत्त।

---

१ **'महतो चक्खुस्स पातुभावो होति'** – **'महतो चक्खु'** का अर्थ 'महती दृष्टि' है, अर्थात इसे प्राप्त कर मनुष्य 'जानने और देखने' (जानाति, पस्सति) लगता है अर्थात वह स्पष्ट रूप से समझने लगता है। वह पूर्ण रूप से विवेकी हो जाता है। अट्ठकथा से स्पष्ट है कि इस वाक्य का अर्थ प्रज्ञा-चक्षु की उत्पत्ति होती है। **कतमस्स चक्खुस्साति**? – अर्थात किस चक्षु की? **पञ्ञाचक्खुस्सस** प्रज्ञा चक्षु की।

२ पटिसम्भिदा (सं. प्रतिसंविद्) – तार्किक विश्लेषण। तार्किक विश्लेषण के चार प्रकार हैं। **अत्थपटिसम्भिदा** – अर्थ विश्लेषण, **धम्मपटिसम्भिदा** – प्रत्ययों का विश्लेषण, **निरुत्ति पटिसम्भिदा** – परिभाषा देना, **पटिभान पटिसम्भिदा** – वह बुद्धि जिसके समक्ष उपरिकथित प्रक्रियाओं से जानने योग्य बातें रखी जाती हैं।

"भिक्षुओ, सारिपुत्त तथागत द्वारा प्रवर्तित अनुत्तर धर्म-चक्र को सम्यक प्रकार से अनुप्रवर्तित करते हैं।"

* * * * *